National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(62): 256-259
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ रमेश यादव
प्रवक्ता हिन्दी,
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर में आटोनामस,
कड़पा।

Correspondence:
डॉ रमेश यादव
प्रवक्ता हिन्दी,
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर में आटोनामस,
कड़पा।

द्विवेदी युगीन कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री का सच

डॉ. रमेश यादव

प्रस्तावना :

भारत में प्राचीनतम कवयित्रियों की परंपरा की बात करें तो वैदिक काल में घोषा, अपाला, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी के बाद सीधे भक्ति काल में आंडाल, अक्का महादेवी और मीरा बाई ही याद आती हैं। इनके अतिरिक्त आधुनिक काल में कितने पाठक सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा के समानांतर अन्य हिन्दी की कवयित्रियों को जानते हैं, शायद बहुत कम। जबकि इनके समानांतर बहुत कवयित्रियां कविताएं लिख भी रही थीं और तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं जैसे कि चांद, मर्यादा, स्त्री दर्पण, सरस्वती, हिन्दी प्रदीप, लक्ष्मी में प्रकाशित भी हो रही थीं । इस लेख के माध्यम से हम उस दौर की अन्य कवयित्रियों की कविताओं और उन कविताओं में अभिव्यक्त उस दौर की स्त्रियों की आवाज को महसूस करने की कोशिश करेंगे। लिखने के अनेक कारण हो सकते हैं। कविता लेखन को तो वैसे भी स्वान्तं सुखाय बहुत पहले घोषित कर दिया गया था। लेकिन आधुनिक युग की कविताएं इस विचारधारा को खंडित करती हैं। अज्ञेय के बहुचर्चित उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' के द्वितीय भाग में शशि उपन्यास के मुख्य पात्र शेखर से कहती है कि "तुम जितना अच्छा लिखोगे, उतना ही बाहर से क्लेश पाओगे। पर भीतर से तुम्हें शांति मिलेगी।"[1] स्त्री लेखन अपने अधिकार, हक़ और आवाज का लेखन है।

हिंदी के कई आलोचक हिन्दी साहित्य को स्त्री लेखन और पुरुष लेखन के रूप में विभाजित करने के पक्ष में नहीं हैं। वे साहित्य को सिर्फ साहित्य की दृष्टि से देखने की बात करते हैं। हिन्दी साहित्य की चर्चित आलोचक रोहिणी अग्रवाल अपने एक लेख 'आकाश चाहने वाली लड़कियों से सवाल' में इसके समर्थन में लिखती हैं कि "महिला लेखन न गाली है, न चुनौती, वरन वह मनुष्य, नागरिक और सामाजिक प्राणी की हैसियत से स्त्री के मानवीय अधिकारों की संघर्षपूर्ण मांग करने वाला साहित्य है। लेखक कोई भी हो सकता है, स्त्री या पुरुष लेखन के घोर एकांतिक क्षणों में चूंकि लेखक अशरीरी हो उठता है, अतः लैंगिक पहचान की बात यों भी बेमानी हो जाती है।"[2] दर असल हिन्दी साहित्य मे स्त्री-विमर्श आधुनिक युग में राजेंद्र यादव द्वारा चलाए गए स्त्री विमर्श के बाद की उपज है। इस लेख में हम द्विवेदी युगीन कवयित्रियों की कविताओं पर बात करेंगे।

हमारे समाज में स्त्रियों के अधिकार को सदैव से हासिए पर रखा गया। उन्हें वह सम्मान न उस दौर में दिया गया और न ही आज उत्तर-आधुनिकता के समय में दिया जा रहा है, जिसकी वे सच में हकदार थीं या हैं। उनकी पहचान आजीवन पति के साथ जुड़ी रहती है। मैनेजर पांडेय अपने एक लेख में लिखते हैं "हिन्दू समाज व्यवस्था में स्त्री की कोई स्वतंत्र पहचान नहीं होती न उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। पुरुष के साथ उसके संबंध से ही उसकी पहचान बनती है।"[3] द्विवेदी युग जो कि लगभग 1900 ई. से 1920 ई तक माना जाता है, उस दौर में तो स्त्री हक की बात करना ही बेमानी नज़र आता है। उस दौर में स्त्रियों के पास न तो शिक्षा थी और न ही आवाज उठाने का हक़। अपने दुःख को खुलकर कह भी नहीं सकती थीं, क्यों कि उस दौर में उन्हें सुनने वाला समाज में कौन था। इसलिए ऐ अपना दुःख ईश्वर से

कहती हैं। श्री मती विंध्यवासिनी देवी अपनी कविता 'कब लोगे ?' में ईश्वर को संबोधित करते हुए लिखती हैं -

दयामय दीन हितकारी, पुनः अवतार कब लोगे
ये महिला जाति अबला की ख़बर भगवान कब लोगे ?

(महिला दर्पण, नवंबर से दिसंबर, 1920 ई.)

इसी तरह श्रीमती सूर्य देवी अपनी 'रूदन' कविता में लिखती हैं

से देव ! क्या दुःख ही लिखा था इस अभागे बाल में ।
रोना निरंतर रह गया फंस कर विपत्ति जाल में।।

(ज्योति- सितंबर 1920 ई.)

इसी तरह श्री मती सूर्य देवी अपनी एक कविता 'नारी विलाप' में लिखती हैं -

हे जगदीश्वर जगतपिता यह कैसी दशा हमारी है ?
बहुत बिपति सह चुकीं हुआ अब मेरा हृदय दुखारी है।।

(नारी विलाप - स्त्री दर्पण- दिसंबर, 1918 ई.)

ईश्वर मनुष्य का अंतिम शरणस्थली है। जब मनुष्य लौकिकता से हताश और मायूस होता है तो अलौकिक शक्तियों की शरण में जाता है। द्विवेदी युगीन कवयित्रियों ने मनुष्य से ही नहीं ईश्वर से भी अपने दुःखों से मुक्ति का गुहार लगाती हैं।

विधवा समस्या - भारतीय समाज में विधवा होना अविशाप था । विधवा स्त्री समाज में हर छोटे से छोटे सुख से वंचित कर दी जाती थीं। यहां तक कि समाज उसे अशुभ मान लेता था । वह तत्कालीन समाज में एक धब्बा समझी जाती थी। विधवा स्त्रियों को वह समाज सबसे पहले मनुष्य ही मानने से इंकार कर देता था। उस जमाने में विधवा स्त्रियों को दुबारा शादी की अनुमति नहीं थी। स्त्री 7 वर्ष की हो या 70 वर्ष की। हमारा समाज पुनर्विवाह की अनुमति नहीं देता था। तत्कालीन समाज में विधवा स्त्रियों का जीवन नारकीय था। विधवा स्त्री को सभी सुख सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता था। इसलिए उन स्त्रियों का शिक्षित होना जरूरी था। शिक्षा ही वह औजार था जिसके माध्यम से विधवाएं अपने अभिशप्त जीवन को बेहतर बना सकती थीं। चारु गुप्ता अपनी किताब 'स्त्रीत्व से हिन्दुत्व तक' में शिक्षित विधवाओं के जीवन में आए बदलाव पर समाज का ध्यान खिंचते हुए लिखती हैं "गौरतलब है कि बनारस की कुछ उच्च वर्गीय विधवा स्त्रियों ने शिक्षा के हथियारों से लैस होकर वैधव्य की पारंपरिक छवियों का खंडन मंडन किया और कड़ी पाबंदियों के बीच भी कुछ फेरबदल करके अपने लिए अनुकूल माहौल बनाने का प्रयास किया।"[4]

पारवती कायमगंज ने अपनी एक कविता 'विधवा विलाप के भजन' में विधवा स्त्रियों के दुःख को व्यक्त करती हैं-

ऐसा न होवे दुखया कोई जैसे है विधवा हर कोई।
कोई ख़बर तक लेता नहीं, कोई दुःख इनका सुनता ही नहीं ।।
सास नन्द हैं ताने देती, सुख से इन्हें नहीं रहने देती।
वृथा ईश्वर ने जन्म दिया है, जो इस लोक में पैदा किया है।।
ग़म खाना और लहू पीना, इस सूरत पर अब है जीना।
पांव के बिछवे भी हैं उतारे, चूड़ियां फोड़ी लाज के मारे।।

(अबलाहितकारक -1902 ई.)

इसी तरह कवयित्री पारवती अपनी दूसरी कविता में लिखती हैं-

विधवा रो रो करें विलाप, सही न जाय विरह की ताप ।
जब से पति गये परलोक , निसदिन हमको भारी शोक।।

××××××

जिस दिन मदन सतावे आय, जिया मूरख पर रहो न जाय।
कामवान जब लेवे तान, व्यापे ज्वाल देह में इन ।।

(अबलाहितकारक - 1902 ई.)

इसी तरह कवयित्री पारवती अपनी एक ग़ज़ल में लिखती हैं -

बेवों की मुर्दों से भी है हालत हुई सिवा।
है हैं बिचारियों की है यह शक्ल क्या हुई।।

(अबलाहितकारक - मार्च- 1905 ई.)

द्विवेदी युग अर्थात 1900 ई. से 1920 ई. के दौर में स्त्रियां अपने अधिकारों से इतनी वंचित थीं कि उन्हें अपने समाज के पुरुषों से अपने अधिकार के लिए गुहार लगानी पडती थी। पारवती देवी अपनी कविता ' स्त्रियों पर दया करो ' के माध्यम से पुरुष प्रधान समाज में बदलाव लाने का प्रयास करती नजर आती हैं। पुरुषों को जागरूक करते हुए लिखती हैं-

अब तो पुरुषों जागो भाई। गहरी निद्रा त्यागों भाई।
आंख खोल देखो जग माहीं। वाला से अधिक दुःखी कुइ नाहीं ।
कोई पढ़ावें इन्हें न विद्या। कोई सिखावे इन्हें न विद्या।
ब्रम्हचर्य से वंचित रहवें। रोग आदि से ग्रसित रहवें।।

(अबलाहितकारक - जून 1905 ई.)

युवा किसी भी समाज के भविष्य होते हैं। इस बात को द्विवेदी युगीन कवयित्रियां समझ चुकी थीं, इसलिए वे सबसे पहले अपने समाज के युवाओं में बदलाव लाना और उन्हें जागरूक करना चाहती थीं। बुन्देलाबाला अपनी कविता में युवाओं को संबोधित करते हुए लिखती हैं -

सावधान हे युवक उमंगों सावधान रखना खूब।
युवा समय के महा मनोहर विषयों में मत जाना डूब।।

xxxxxx

अहंकार सर्बदा जगत में मुंह की खाता आया है।
नय नम्रता मान पाते हैं सबने यही बताया है।।

(बुन्देलाबाला - लक्ष्मी- दिसंबर 1909 ई.)

स्त्री शिक्षा - किसी समाज के विकास और बदलाव के लिए उस समाज में स्त्रियों और पुरुषों को समान रूप से शिक्षित होना जरूरी है। बीसवीं सदी के शुरुआती दिनों में तत्कालीन समाज सुधारक इस बात को समझ चुके थे। लेकिन वे स्त्री शिक्षा उतना ही चाहते थे जितने से एक स्त्री कुशल गृहिणी बन सके, उससे अधिक नहीं। सुजीत कुमार सिंह अपनी पुस्तक 'स्त्री कविता 1900-1920' की भूमिका में लिखते हैं -"उन्नीसवीं सदी बीतते-बीतते हिन्दू सुधारकों, लेखकों, कार्यकर्ताओं आदि ने यह स्वीकार कर लिया कि उत्तम गृहस्थी, पतिव्रता स्त्री, आदर्श माता, चरित्रवान संतान के लिए स्त्रियों का शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है।"[5]

श्रीमती सोनमती अपनी कविता में स्त्रियों की शिक्षा की बात करती हैं-

प्रतिदिन पढ़ो प्रिय बालपन में व्यर्थ वय नहिं खोईए।
खेल कूद हठीलता तजि अधिक कबहु न सोइए।।
पर अभूषण और के लखि, आय घर नहिं रोईए।
जननी जनक सामर्थ से, निज वस्तु पर मन भोइए।।

(कन्या सर्वस्व- श्री मती सोनवती-1913 ई.)

श्रीमती यज्ञ कुमारी अपनी कविता 'विद्या' में लिखती हैं-

विद्या धन सम धन नहीं, देखहु सकल जहान।
इससे प्रति दिन प्रेम से, विद्या का धर ध्यान।।
सीखो बहिनों शुद्ध चित्त, सद्गविद्या सब कला।
घर बैठे पढ़ लो सभी, देश देश का हाल ।।

(कन्या-सर्वस्व, अप्रैल 1914 ई.)

स्त्री जागरूकता - शिक्षा के बगैर समाज में जागरूकता असंभव है, जो समाज जितना शिक्षित होगा उतना ही जागरुक होगा। इसलिए स्त्रियों को भारतीय शिक्षा के साथ साथ यूरोपीय शिक्षा देने की बात की गई, जिससे समाज में बहुत बदलाव आया। इसी बदलाव की ओर सुजीत कुमार सिंह अपनी किताब में संकेत करते हैं। "यूरोपीय ज्ञान के संपर्क में आने के कारक अभिजात घरों की लड़कियां भारतीय परंपरा, सभ्यता व संस्कृति से तुलना करतीं। यूरोपीय लड़कियां वयस्क होने पर भी विवाह नहीं करती थीं। भारत में आठ से पंद्रह वर्ष की उम्र में विवाह हो जाता था। उच्च घरानों की नई शिक्षा प्राप्त लड़कियों में भी अविवाहित रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी।"[6] श्रीमती विद्यावती अपनी 'चेतावनी' कविता में लिखती हैं-

अब तलक सोई तुम्हें सोने से हासिल क्या हुआ।
व्यर्थ अपने वक्त को खोने से हासिल क्या हुआ।।
शान और शौकत तुम्हारी सारी जब जाती रही।
फिर भला अफसोस कर रोने से हासिल क्या हुआ।

(श्रीमती विद्यावती- पत्रिका- स्त्री धर्म- शिक्षक, 1912 ई.)

इसी तरह जनक दुलारी पाण्डेय अपनी कविता 'बहनों से विनय' में लिखती हैं

भारत की ललनाओ बहनों देखो हुआ सबेरा।
सब तो हुए सचेत, तुम्हें क्या आलस ने घेरा।।
पूर्व दिशा में प्रकट हुई है ज्ञान -सूर्य की कांति।
मिटी मोह की रात, दे रही हवा नई यह शांति।।

(जनक दुलारी पाण्डेय, गृह लक्ष्मी, आश्विन 1913 ई.)

बाल विवाह - बाल विवाह तत्कालीन भारतीय समाज की सबसे भयावह प्रथा थी। जहां न तो स्त्री की उम्र देखी जाती और न ही उसकी मर्जी। इसका परिणाम यह होता था कि लड़कियां कम उम्र में मां बन जाती, और फिर तमाम बिमारियों का बोझ उम्र भर ढ़ोती रहतीं। सदियों से भारतीय समाज लड़की को बोझ ही समझता आया है। तत्कालीन समय में हर पिता इस बोझ से यथाशीघ्र मुक्ति पा लेना चाहता था। तत्कालीन समाज बाल विवाह के पक्ष में भी अपना तर्क गढ़ ही लेता था। चारु गुप्ता पुरुषों के इस कुतर्क को उजागर करती हुई लिखती हैं "बाल विवाह के कारण कमजोर प्रसव और मृत्यु के तर्कों का खंडन करने के लिए जलवायु और विवेक आधारित तर्क गढ़े गए। यह कहा गया कि दो लड़कों को जन्म देने वाली और दिन में एक शाम खाना खाने वाली 16 वर्षीया हिन्दू महिला यूरोप की 25 वर्षीय अविवाहित महिला की तुलना में ज्यादा मजबूत है।"[7] श्रीमती विद्यावती अपनी कविता 'बाल बिवाह' में लिखती हैं-

बचपन के ब्याहने से, अबहूं तो बाज आओ।
बच्चों की कर के शादी, करती हो क्यों बर्बादी।।
बुधि बल औ शान शौकत, मिट्टी में मत मिलाओ।
बहिनों! ये मुल्क भारत, इसी से हुआ है गारत।

(श्रीमती विद्यावती लाहौर,स्त्री धम्म-शिक्षक,आश्विन-1912 ई.)

स्वदेश प्रेम - हम जानते हैं कि भारत अंग्रेजों का उपनिवेश था। स्वतंत्रता आन्दोलन रफ्तार पकड़ रहा था। जिसमें तत्कालीन कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से अंग्रेजी के खिलाफ आवाज उठाईं । वे अंग्रेजी सरकार द्वारा भारत के व्यापारिक शोषण और अन्य समस्याओं पर कविता लिख जनता को जागरूक किया। अंग्रेजो द्वारा भारतीय व्यापार को नष्ट करने पर राजदेवी अपनी कविता 'हमारा व्यापार ' में लिखती हैं-

हाय ! हमारा हुआ आज व्यापार नष्ट है।
हां ! व्यापार विहीन है अब महा कष्ट है।।
किसी समय व्यापार यहां का चढ़ा हुआ था।

देशी वस्तु प्रचार जनों में बढ़ा हुआ था।।
कला कुशल थे प्रथम यहां के सब व्यापारी।
हां ! व्यापार विहीन गई उनकी मति मारी।
वस्तु यहां की सभी जगह भेजी जाती थी।
अन्य देश के लोग में आदर पाती थी।।

(राजदेवी कुंवारि, तरंगिणी- जुलाई-1915 ई.)

साथ ही साथ तत्कालीन कवयित्रियों ने स्वतंत्रता आन्दोलन पर भी अपनी कविताएं लिख रही थीं, और स्वतंत्रता सेनानीयों को प्रोत्साहित कर रही थीं । श्रीमती चंद्रमुखी देवी अपनी एक कविता' हमारा कर्तव्य 'में लिखती हैं

हम इन्डियन भी आज हैं तैयार युद्ध पर।
वर्षों के बाद हाथ है बन्दूक खड्ग पर।।

xxxxxxx

हम हैं वही के जिन के बड़े नाम कर गए।
लाखों को रण में मार के जो स्वर्ग को गए ।।
धोखे की एक लड़ाई भी हम ने नहीं करी ।

(श्रीमती चंद्रमुखी देवी, स्त्री दर्पण- सितंबर 1917 ई.)

निष्कर्ष:

छायावाद से पूर्व की रचनाओं, विशेष रूप से कविताओं में इतिवृत्तात्मकता या स्थूलता का आरोप लगाया जाता है। इसकी शुरुआत आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सबसे पहले अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लगाया। उसके बाद रामविलास शर्मा भी अपनी पुस्तक 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' में वही आरोप लगाते हुए लिखते हैं कि "छायावाद से पहले और उसके समानांतर स्वाधीनता आंदोलन से जो इतिवृत्तात्मकता कविता लिखी जा रही थी "।[8] यह सच है कि द्विवेदी युगीन कविताओं में इतिवृत्तात्मकता/ स्थूलता है, लेकिन द्विवेदी युग से पूर्व जिस साहित्य में समाज था ही नहीं, साहित्य सिर्फ मनोरंजन भर था। उस दौर में खड़ी बोली में लिखी जानी शुरू हुई, कविताओं में परिपक्वता कैसे आ सकती है, उनकी पीड़ा की अभिव्यक्ति भी उस दौर की बड़ी उपलब्धि है। 1900 ई. के बाद महिला कवियों ने अपनी कविताओं में अपनी पीड़ाओं को अभिव्यक्ति दीं। द्विवेदी युगीन साहित्य में कवियों की कविताओं पर उनके क्षेत्रिय बोलियों का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। इसका मुख्य कारण यही है कि उस दौर में खड़ी बोली हिन्दी का कोई मानक रूप लेखकों के समक्ष नहीं था। 1900 ई के आस पास जो कवयित्री जिस क्षेत्र से थीं वहां की बोली का उनकी कविताओं पर प्रभाव स्पष्ट दिखता है । एक बात और ध्यान देने वाली यह है कि 1850 ई के बाद भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र खुद साहित्य में जनपदीय भाषाओं के प्रयोग पर बल देते हैं। रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक परंपरा का मूल्यांकन में भारतेंदु हरिश्चंद्र के बारे में लिखते हैं कि " साहित्य के लोक रुपों को अपनाकर जनपदीय भाषाओं में साहित्य रचने पर भी उन्होंने जोर दिया।"[9] अर्थात निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि द्विवेदी युगीन कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में समाज के हर उन समस्याओं पर कविताएं लिखीं जिन्हें वे रोजमर्रा की जिंदगी में देख रही थीं। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, विधवा विवाह, सामाजिक स्वीकृति, सामाजिक अधिकार, भेदभाव , सामाजिक जागरूकता हर विषय पर कविताएं लिखीं और कविता के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

संदर्भ ग्रंथ–सूची :

1 शेखर एक जीवनी, भाग 2, सरस्वती प्रेस -इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या – 127

2 पितृसत्ता के नए रुप - राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे। राजकमल प्रकाशन 2010, आकाश चाहने वाली लड़कियां - रोहिणी अग्रवाल, पृष्ठ संख्या-131

3 श्रृंखला की कड़ियां और मुक्ति की राहें,- मैनेजर पांडेय, तद्भव अंक- 25, पृष्ठ संख्या – 87

4 स्त्रीत्व से हिन्दुत्व तक, चारु गुप्ता- पृष्ठ संख्या- 145) राजकमल प्रकाशन 2012

5 सुजीत कुमार सिंह, स्त्री कविता -1900-1920" की भूमिका, पृष्ठ संख्या-6, रुद्रादित्य प्रकाशन, प्रयागराज, 2025

6 सुजीत कुमार सिंह, स्त्री कविता-1900-1920" की भूमिका, पृष्ठ संख्या-37, रुद्रादित्य प्रकाशन, प्रयागराज, 2025

7 स्त्रीत्व से हिन्दुत्व तक - चारु गुप्ता, पृष्ठ संख्या-108, राजकमल प्रकाशन -2012

8 नयी कविता और अस्तित्ववाद (भूमिका) - रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन - 2003

9 परंपरा का मूल्यांकन - रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या -25

(इस शोध पत्र में उद्धरित सभी कविताएं सुजीत कुमार सिंह की पुस्तक 'स्त्री कविता 1900-1920' पुस्तक से ली गई हैं,
रुद्रादित्य प्रकाशन, प्रयागराज, 2025)